



ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम

(Structural Adjustment Programme)

विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को बाजारवादी रास्ते पर चलाने के लिए ब्रेटन वुड्स संस्थाओं (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक) द्वारा तजवीज की जाने वाली नीतियाँ ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम (एसएपी) के नाम से जानी जाती हैं। जैसे ही कोई विकासशील देश भुगतान अधिशेष के संकट में फँस कर इन संस्थाओं के पास ऋज लेने के लिए जाता है, उसके सामने अपनी अर्थव्यवस्था में समायोजन करने की शर्त रखी जाती है। यह संकट विदेशी मुद्रा कोष में आयी कमी से लेकर और भी कई तरह का हो सकता है। मुद्रा कोष इस ढाँचागत समायोजन को बचाव कार्यक्रम की संज्ञा देता है। अलग-अलग देशों के हिसाब से ये नीतियाँ कुछ अलग-अलग भी हो सकती हैं, पर आम तौर पर उनके कुछ पहलू समान होते हैं। मसलन, तक्ररीबन सभी देशों से कहा जाता है कि वे सरकारी खर्च में कमी लायें, स्थानीय उद्योगों को दी जाने वाली सबसिडी खत्म करें, सरकारी क्षेत्र के उद्योगों और अन्य संस्थाओं का निजीकरण करें, अपनी मुद्रा का मूल्य घटाएँ, लोक-कल्याण पर खर्च करने वाली रकम को काफ़ी कम करें, विदेशी निवेश पर लगी पाबंदियाँ उठा लें, इस तरह के सुधार करें कि उत्पादकता-दक्षता-स्पर्धा में बढ़ोतरी हो।

आईएमएफ़ का दावा है कि अगर कोई देश उसके कहने पर ये सभी क़दम उठायेगा तो उसे विदेशी निवेश पाने में आसानी होगी, उपलब्ध वित्तीय संसाधनों के अनुपात में ही माँग संयोजित हो जाएगी और इस प्रकार दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य

में आर्थिक वृद्धि हासिल की जा सकेगी। ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों का इतिहास बताता है कि उनका संबंध विश्व अर्थव्यवस्था में समय-समय पर आने वाले संकटों से है। सत्तर के दशक के बाद कभी तेल संकट, कभी ऋण संकट, कभी आर्थिक मंदी और कभी उत्पादन में जड़ता और मुद्रास्फीति के मिले-जुले असर के कारण विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं में गहरे हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

अस्सी के दशक के बाद से भारत, मैक्सिको, अर्जेंटीना, ब्राज़ील, नाइजीरिया, इंडोनेशिया जैसे देशों को विभिन्न कारणों और विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन कार्यक्रम अपनाने पड़े हैं। दक्षिण कोरिया और थाईलैंड जैसे नवविकसित समझे जाने वाले देशों को भी नब्बे के दशक में आये मुद्रा संकट से बचने के लिए मुद्रा कोष की शरण में जाना पड़ा है। 1980 से पहले विश्व बैंक ने अपने कर्जों का बहुत कम प्रतिशत इन कार्यक्रमों के आधार पर आम्बटित किया था, लेकिन उसके बाद बैंक के आधे से ज़्यादा कर्ज इसी आधार पर दिये गये हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने भी मुद्रा कोष दो बार ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम की शर्तें रख चुका है जिनके कारण भारतीय अर्थशास्त्रियों के बीच इस मुद्दे पर काफ़ी बहस हुई है। दरअसल, ये कार्यक्रम ख़ासे विवादास्पद हैं। न केवल वामपंथियों ने इनकी आलोचना की है, बल्कि इनकी प्रभावकारिता को नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने भी आड़े हाथों लिया है। इसके मुख्य तौर से तीन कारण हैं : पहला, इन कार्यक्रमों की संरचना काफ़ी कड़े और ग़ैर-लचीले ढंग से की जाती है। भुगतान अधिशेष की समस्याओं से जूझते देशों की अलग-अलग परिस्थितियों और राजनीतिक आवश्यकताओं को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ करके इन्हें

बनाया जाता है। कुछ विशेषज्ञों की राय है कि नब्बे के दशक के आखिरी वर्षों में पैदा हुए एशियाई वित्तीय संकट को कम करने के बजाय मुद्रा कोष के बचाव कार्यक्रम ने और गहरा कर दिया था। दूसरा, प्रौरी आर्थिक राहत मिलने की स्थिति में भी ये कार्यक्रम विकास के जिस रास्ते पर विकासशील देशों को डालते हैं, वे टिकाऊ विकास की कसौटियों पर खरे नहीं उतरते। विदेशी मुद्रा कमाने के लिए इन देशों से अपना हर सम्भव उत्पाद निर्यात करने के लिए कहा जाता है, भले ही इस निर्यातोन्मुख नीति का पर आगे चल कर पर्यावरण पर कितना भी नुकसानदेह असर क्यों न पड़े। निर्यात की होड़ में जब एक से ज्यादा देश एक ही क्रिस्म का उत्पादन अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बेच रहे हों, तो अक्सर उसके दाम गिर जाते हैं और इस चक्कर में कर्जदार देश को उत्तरोत्तर अपना माल अधिक से अधिक मात्रा में सस्ती दर पर बेचना पड़ता है। तीसरा, विदेशी मुद्रा कमाने के लिए बनायी गयी निर्यातोन्मुख नीतियों को कामयाब करने के लिए ये देश अपने अधिकांश संसाधन सामाजिक क्षेत्र से निकाल कर बिकाऊ माल के उत्पादन पर लगाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। नतीजे के तौर पर स्वास्थ्य, शिक्षा, साफ़-सफ़ाई और स्थानीय उद्योग को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में भारी कटौती करनी पड़ती है। इसका परिणाम स्थानीय समुदायों के और दरिद्रीकरण में निकलता है।

इसी तरह की आलोचनाओं के मद्देनजर 2002 के बाद विश्व बैंक ने समायोजन कार्यक्रमों में एक नये पहलू का समावेश किया गया है। इसे पाँवटी रिडक्शन स्ट्रेटजी पेपर्स (पीआरएसपी) के नाम से जाना जाता है। बैंक का विचार था कि कई देश बहुत अनमने भाव से समायोजन कार्यक्रम चलाते हैं जिससे कई बार वह प्रभावी साबित नहीं हो पाता और राजकोषीय नीति में वांछित परिवर्तन नहीं हो पाते। अगर इन कार्यक्रमों को गरीबी उन्मूलन की नीतियों के रूप में पेश किया जाएगा तो इस कार्यक्रम की वैधता और लोकप्रियता में बढ़ोतरी होगी। गरीबी उन्मूलन की नीतियों के कारण कार्यक्रम पर अमल करने वाले देश निर्णय प्रक्रिया में ज्यादा गहराई से शामिल महसूस करेंगे। दिलचस्प बात यह है कि पीआरएसपी और एसएपी के सार में विशेषज्ञों ने किसी खास फ़र्क की शिनाख्त नहीं की है। चाहे एसएपी हो या पीआरएसपी, निर्णय के सूत्र मोटे तौर पर उन्हीं देशों और संस्थाओं के हाथ में रहते हैं जिनके धन से कर्ज का बंदोबस्त होता है।

ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों की आलोचना यहीं खत्म नहीं होती। विश्लेषकों ने कुछ बेहद संगीन और व्यापक मुद्दों की तरफ इशारा किया है जिनका ताल्लुक गरीब देशों की राजनीतिक सम्प्रभुता से है। सवाल यह है कि उस देश

की सम्प्रभुता कितनी सुरक्षित मानी जाएगी जिसकी आर्थिक नीतियाँ किसी बाहरी संगठन के निर्देशों के तहत बनायी जाती हों, और उनका कार्यान्वयन भी उसी की देखरेख में होता हो? क्या यह एक हकीकत नहीं है कि समायोजन कार्यक्रमों के प्रचलन के बाद ही विकासशील देशों में स्थानीय प्रशासन की अवहेलना करके आगे बढ़ोत्तरी वाले गैर-सरकारी संगठनों की गतिविधियाँ बढ़ी हैं?

मुद्रा कोष और विश्व बैंक के दबाव में आ कर सरकारी क्षेत्र का निजीकरण करने के दुष्परिणाम कई देशों में सामने आ चुके हैं। बोलीविया में पानी सप्लाई और सब-सहारा अफ्रीका में स्वास्थ्य प्रणाली के निजीकरण ने जल और स्वास्थ्य जैसी आवश्यकताओं को इतना महँगा कर दिया है कि गरीबों की उन तक पहुँच नहीं रह गयी है। दूसरी तरफ़ एसएपी द्वारा लादी गयी कृषि नीतियों और खाद्यान्न के व्यापारीकरण की नीतियों के कारण गरीब देशों में असंतुलित शहरीकरण को बढ़ावा मिला है। देहातों से बहुत बड़े पैमाने पर ग्रामीणों का शहरों की तरफ़ पलायन हो रहा है जिससे शहरी गरीबी और झुग्गी क्षेत्रों में अनाप-शनाप बढ़ोतरी हुई है। कुल घरेलू उत्पाद में बढ़ने के बावजूद विकासशील देशों के खेतिहर क्षेत्रों को समायोजन कार्यक्रमों से लाभ नहीं हुआ है।

देखें : अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम, पेटेंट, ब्रेटन वुड्स प्रणाली, भारत का भूमण्डलीकरण, भारत में पेटेंट कानून, भारत में बहुराष्ट्रीय निगम, भारत में शेर्य संस्कृति, भूमण्डलीकरण, भूमण्डलीकरण का इतिहास-1 और 2, भूमण्डलीकरण और बेरोजगारी, भूमण्डलीकरण और गरीबी, भूमण्डलीकरण और पूँजी बाजार, भूमण्डलीकरण और लोकतंत्र, भूमण्डलीकरण और राज्य, भूमण्डलीकरण और राष्ट्रीय सम्प्रभुता, भूमण्डलीकरण और वित्तीय पूँजी, भूमण्डलीकरण और वित्तीय उपकरण, भूमण्डलीकरण के आलोचक, भूमण्डलीकरण के खिलाफ़ प्रतिरोध, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन।

संदर्भ

1. जी. मोहन ब्राउन (2000), बी. मिलवार्ड और ए.बी. जैक-विलियम्स, *स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट : थियरी, प्रैक्टिस एंड इम्पैक्ट्स*, रॉटलेज, लंदन.
2. जयराज कार वगैरह (1995), *द सोशल इम्पैक्ट ऑफ़ एडजस्टमेंट ऑपरेशंस*, ऑपरेशंस इवैलुएशन प्रोग्राम, विश्व बैंक, वाशिंगटन, डीसी.
3. फ्रांसिस स्टीवर्ड (1995), *एडजस्टमेंट एंड पाँवटी : ऑप्शंस एंड चॉइसेज़*, रॉटलेज, न्यूयॉर्क.
4. पॉल स्टीटेन (1987), 'स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट : अ सर्वे ऑफ़ द इशूज़ एंड ओपीनियंस', *वर्ल्ड डिवेलपमेंट*, खण्ड 1, अंक 12.